

जीना चाहता हूँ

जीना चाहता हूँ

(कविता-संग्रह)

भोलानाथ कुशवाहा



अंतिका प्रकाशन

दो शब्द

ISBN 978-81-907424-6-7

जीना चाहता हूँ

© भोलानाथ कुशवाहा

पहला सजिल्द संस्करण : 2008

मूल्य : 300.00 रुपए

प्रकाशक

अंतिका प्रकाशन

सी-56/यूजीएफ-4, शालीमार गार्डन, एक्सटेंशन-II,

गाज़ियाबाद-201005 (उ.प्र.)

फ़ोन : 0120-6475212

ई-मेल : antika1999@yahoo.co.in

आवरण सज्जा : अंकन

रेखांकन : आर. पी. शर्मा, 'बया' से साभार

मुद्रक : आर.के. ऑफ़सेट प्रोसेस, नवीन शाहदरा, दिल्ली-32

JEENAA CHAAHATAA HOON

(A Collection of Poems) by Bholanath Kushwaha

Price : Rs. 300/-

एक वर्ष के अन्तराल के साथ ही दूसरा कविता-संग्रह 'जीना चाहता हूँ' लेकर उपस्थित हूँ। इस बार 11 खण्डों में 91 कविताएँ शामिल हैं। प्रथम कविता-संग्रह 'कब लौटेगा नदी के उस पार गया आदमी' अपने लम्बे शीर्षक के कारण भी चर्चा में रहा। इसकी व्याख्या भी अलग-अलग तरीके से हुई। समकालीन कविता-संग्रह का यह लम्बा शीर्षक आदमी के दूर निकल जाने की प्रतिध्वनि है। शीर्षक पढ़ते समय साँस टूट जाती है। ठीक उसी प्रकार, जैसे आदमी के जीवन में ठहराव नहीं है। दौड़ते-दौड़ते उसकी बार-बार साँस उखड़ जा रही है।

बहरहाल प्रथम कविता-संग्रह पर देश भर से अच्छी प्रतिक्रियाएँ प्राप्त हुई। सुखद यह लगा कि आज जब कहा जा रहा है कि 'कविता' आम आदमी से कट गयी है या 'कविता' मर गयी है, तब मेरी कविताएँ 'आम आदमी' में स्वीकृत हुईं। 'आम आदमी' की समझ में आयीं। बार-बार यह भी कहा जाता रहा है कि पाठक तय करेगा कि रचना कैसी है। हिन्दी की जानी-मानी कथाकार, विदुषी चित्रा मुद्गल ने अपने पत्र में लिखा है—

प्रिय भोलानाथ जी

स्नेह

'कब लौटेगा नदी के उस पार गया आदमी' प्राप्त हुई। खुशी हुई कि आपने मुझे अपनी कविताएँ पढ़ने का अवसर दिया। सामाजिक विषमताजन्य दैन्य की विसंगतियों का जैसा सरोकारीय खाका आपने खींचा है, मन-मस्तिष्क को गहरे झकझोर गया। 'पुल के नीचे के लोग' पढ़ते ही कुछ इतना उदास किया कि उबरने की कोशिश ने बार-बार फिर अपने तलछट के सियाह अंधेरे में खींच लिया।

‘अंतिका प्रकाशन’ को धन्यवाद। आपको मेरी हार्दिक बधाई और शुभकामना कि आपकी रचनाशीलता सतत प्रवहमान रहे। सच कहूँ तो कुशवाहा भाई, मैं समीक्षक नहीं हूँ। मगर कविताएँ पढ़ती हूँ। कविताएँ मुझे सन्नद्ध करती हैं शेष बिखरे पाठों को पढ़ने और सहेजने के लिए, उनसे मुठभेड़ करने के लिए। आदरणीय पांडेय जी की भूमिका कविताओं का अर्क है। उन्हें भी मेरी बधाई दें। अगली किताब की प्रतीक्षा रहेगी।

आपकी
चित्रा मुद्गल
5.5.08, दिल्ली

आदरणीय चित्रा मुद्गल जी की ‘कविता’ के प्रति यह आत्मीयता आज की कविता के जीवित होने का प्रमाण पत्र हैं। जहाँ तक मेरे पहले कविता-संग्रह की कविताओं का प्रश्न है, उन्हें जिसने पढ़ा, लगा उसी की बात है। गली, मोहल्ले रिश्तेदारियों में आम लोगों ने रोक-रोक कर कविताओं पर बात की। कुछ लोग मेरे घर आये और कविताओं में आये पात्रों को तलाशते दिखे। एक सज्जन तो ऐसे मिले कि उन्होंने कहा, ‘अब तक परिवार के संचालन के बारे में जो मेरा नजरिया था वह ठीक नहीं था। आपकी कविताएँ पढ़ने के बाद मैंने उसमें परिवर्तन किया और अब हल्का महसूस कर रहा हूँ।’ कुछ लोग नाराज और सतर्क दिखे। उन्हें लगा कि कविताओं में उन्हीं की बात लिख दी गयी है। कविता का इस तरह से आम हो जाना, सुखद तो है ही, ‘कविता’ के आलोचकों पर प्रहार भी है। यह ‘रियेक्शन’ कविताओं की सफलता का प्रमाण भी है। देश के कई लेखकों-साहित्यकारों ने पत्र द्वारा अपनी शुभकामनाएँ व्यक्त कीं। कुछ से सीधे फोन पर बात हुई। कई लोगों की प्रतिक्रियाएँ अन्य माध्यमों से मिलीं। कई साहित्यिक पत्रिकाओं के सम्पादकों ने समीक्षा छापने की स्वीकृति दी। छपा भी। अनेक लोगों ने छापने के लिए कविताएँ माँगीं। प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में कविता संग्रह का सचित्र जिक्र, टिप्पणी और समीक्षाओं ने कविता-संग्रह को काफी प्रचारित किया। कुछ मित्रों के सुझाव अच्छे लगे। कुछ पूर्वाग्रही और जिद्दी लोगों से और तेजी से लेखन की प्रेरणा मिली। शायद इसीलिए दूसरा कविता संग्रह शीघ्र ही आ गया।

शिल्प की बात उठी। लेकिन कविता के शिल्प के ‘मानक’ पर संतोषजनक उत्तर नहीं मिला। दरअसल छन्द, शिल्प, बिम्ब की सौन्दर्यबोधक जकड़न को तोड़कर ही तो नयी कविता आज की कविता तक पहुँची है। आज एक-एक कविता

का अपना शिल्प है। उसका भाषिक विन्यास अपना है। उसके सरोकार अपने हैं। उसकी जमीन और खुराक ग्रहण करने के तरीके अपने हैं और खड़ा होने तथा चलने का ‘स्टाइल’ अपना है। अब यह कहना कि ‘अमुक’ तरह से लिखी गयी कविता ही मान्य है, ठीक नहीं। ‘साइबर एज’ में विचार और संवेदना पर प्रहार के इस दौर में आलोचक को कविता के आवरण को निहारने के बजाय उसकी आत्मा में प्रवेश करना होगा। क्योंकि वह वाह-वाह की न तो मोहताज है और न ही आनन्द देने वाली कोई ‘चीज’ है। अब वह उस आदमी की पीड़ा की सहभागी है, जिसकी ‘आह’ निकलनी बन्द हो गयी है। वैसे बचपन में सुना करता था, ‘साधु चलें भुइयाँ-भुइयाँ, चिउटी बचाइके।’ चीटी को जीने देने की यह चेतना, साम्यवादी चेतना ही तो है। और आज का सारा साहित्य लेखन भी तो उसी नींव पर खड़ा है।

जहाँ तक इस कविता-संग्रह ‘जीना चाहता हूँ’ पर अपना पक्ष रखने की बात है वह मैं इसलिए जरूरी समझता हूँ क्योंकि आम पाठक से रू-ब-रू होना बहुत आवश्यक है। आज की कविता पर आम पाठक की यह टिप्पणी अक्सर सुनने को मिलती है कि वह समझ से परे है। मेरा मानना है कि कविताएँ केवल विद्वानों या समीक्षकों के लिए नहीं लिखी जातीं। ऐसे में कविताओं को आम पाठक से जोड़ने में ‘भूमिकाएँ’ और कवि के ‘दो शब्द’ प्रवेश द्वारा बनाने का कार्य करते हैं। इनके माध्यम से बहुत सारे लोग ‘आज के समय’ और कविता में उसके प्रयोग को आसानी से समझ लेते हैं। पूर्व में प्रकाशित कविता-संग्रह पढ़ने वाले एक सामान्य पाठक की यही प्रतिक्रिया थी। यह भी होता है कि इन आलोखों में कुछ ऐसी बातें आ जाती हैं जो विमर्श का रास्ता तो बनती ही हैं, साथ ही साहित्य की दिशा भी तय करती हैं। अच्छी भूमिकाएँ हमेशा समय के स्वर को रेखांकित करती हैं।

समय की गति बहुत तेज है। पिछले 50 वर्ष में हमारे आस-पास का परिवेश, रहन-सहन, बोल-चाल एवं व्यवहार का तौर-तरीका एकदम बदल गया। तीज-त्योहार-पर्व पर सामाजिक एकजुटता एवं समरसता के मायने बदल गये। अब मेले-ठेले मिलने-जुलने का स्थान न होकर बाजार बन गये हैं। पद और पैसे की भूख ने आम आदमी का सुख-चैन छीन लिया है। नव बाजार ने दैनिक जीवन को अनावश्यक रूप से खर्चीला बना दिया है। एक ओर भविष्य के लिए धन संग्रह का नारा है तो दूसरी ओर वर्तमान की चिन्ता। नयी खर्चीली परम्पराएँ एवं बड़ा दिखने की स्पर्धा ने आदमी को तोड़कर रख दिया है। जीवन के लिए अतिआवश्यक खाद्य सामग्रियों आटा, दाल, चावल, सब्जी, तेल आदि के भाव आसमान छू रहे हैं। रिश्त, झूठ और धोखा आज के आदमी के खास हथियार बन गये हैं। आतंकवाद भयंकर बिमारी की तरह जड़े फैला चुका है। महिलाएं, दलित, श्रमिक, बच्चे,

मुस्लिम, मजदूर बदली स्थितियों में नये संकट से जूझ रहे हैं। जातिवादी एवं धार्मिक संकीर्णता ने मुखौटा बदल लिया है। आर्थिक रूप से सम्पन्न एवं दबंग वर्ग तेजी से आर्थिक दोहन कर पूरे बाजार पर कब्जा कर लेने की फिराक में है। दूसरी ओर कमजोर वर्ग लगातार टूटता जा रहा है। नौजवान काम और नौकरी की तलाश में दर-दर भटक रहा है। लूट और महिलाओं के साथ दुर्व्यवहार की घटनाओं में तेजी से इजाफा हुआ है। शिक्षा पर भी माफियाओं का कब्जा है। इन स्थितियों के लिए अगर सरकारें और नेता जिम्मेदार हैं तो 'लोक' भी अपने को मुक्त नहीं कर सकता।

मेरी कविताएँ बीमारी की जड़ तक पहुँचने के प्रयास में जुटी हैं ताकि उसे उखाड़ कर फेंका जा सके। मेरी कविताएँ एक ऐसे नये विश्व का सपना सजोये हैं जिसमें आपसी भाई-चारा हो और सबके लिए विकास का समान अवसर हो। अन्त में सबके प्रति विनीत भाव एवं आभार।

— भोलानाथ कुशवाहा

अनुक्रम

आतंक		पता नहीं क्या बनना है!	
जीना चाहता हूँ!	13	बच्चे	45
आतंक	14	पता नहीं क्या बनना है!	47
नफरत के बीज	15	पन्द्रह अगस्त का दिन	49
अन्तिम साँसें	17	शोक संवेदना	51
इस्तेमाल हुआ	19	कॉउंसिलिंग	52
अर्थ	21	बाबा!	54
दिल्ली में विस्फोट	22	अभिमन्यु	55
गलत हाथों में हथियार	24	परिवेश से	57
तोड़ दिया 'पिंजरा'!	25	दिल्ली जाने वाले बच्चे	59
आदमखोर	27		
		वह	
खुद बुनेंगे ताना-बाना		अब होगी लड़ाई	63
धरती का ईश्वर	31	वह	64
'तनहाई' में	33	बदलाव	65
खुद बुनेंगे ताना-बाना	35	ताकि आग जलती रहे	66
लड़की ने देखा	36	रामदास हरिजन	67
मोहताज	38		
अस्वीकृति	39	रोज का धंधा	
प्रश्नवाचक	40	कभी भी	71
पीठ पर बोरा	41	रोज का धंधा	72

जोर लगाकर खड़ी हुई	74	नये घर की तलाश	122
वह आदमी है	76	नहीं उगना चाहिए था	
समकोण त्रिभुज में	78	पिंजरा खाली था	125
अपनी संसद के लिए	80	नहीं उगना चाहिए था	127
		बहस का मुद्दा	128
विकास जी		तुम्हारी पीठ पर से	130
खाली पेट की चिन्ता	85	सच्चाई जान तो लो	131
विकास जी	86	फार्म भरते हुए	133
रंगीन पर्याय चाहिए	87	आज का समय	134
तो क्या हुआ	88	इतने अच्छे क्यों	135
कुछ लोगों को	91	'बर्थ डे' मनाया	136
देख नहीं पाते	93		
शुभ-चिन्तक	95	आजादी चाहिए	
		सच लिखा	139
मोबाइल बनाम चार्जर		रोशनी क्यों नहीं	142
पतली स्क्रीन	99	आजादी चाहिए	144
मोबाइल बनाम चार्जर	101	सपने में दिल्ली	146
वायरस	102	गुरुत्वाकर्षण के खिलाफ	149
एलियन्स	103	बहुत कड़वा नहीं	151
नार्को टेस्ट से	104	आओ	153
अभियन्ता-संस्कृति	106	कंधे सीढ़ी	155
		चिन्तन और चिन्ता	157
कबीले से छूट गया		मैं पुल हूँ	
रोशनी के करीब से	111	कोई सीमा न रहे	161
कुछ भी बनने को तैयार	112	ढूँढ़ रहा हूँ	163
कितना शान्त	113	अन्विति को तोड़ा	165
कबीले से छूट गया	114	अनुबन्ध	167
भौचक	115	रोज शाम मिलती रही	168
आइये चला जाय	116	तोड़ते-तोड़ते थक जाओगे	170
सीज फायर	118	बिखरते तिनके	172
दोनों रास्ता	119	मैं पुल हूँ	174
मन्दिर का लाउडस्पीकर	120		



आतंक

जीना चाहता हूँ!

मैं
हँसना
चाहता हूँ!

मगर
कहाँ
हँसूँ?

मैं
रोना
चाहता हूँ!

मगर
कहाँ
रोऊँ?

मैं
जीना
चाहता हूँ!

मगर
कहाँ
जीऊँ?

आतंक

चिड़िया
दाना चुगती है
पानी पीती है

पिंजरे से
बाहर
नहीं आती है

फटकी
खोलने पर
फड़फड़ा कर
कोने में
दुबक जाती है

इस दौर का
यही
कच्चा चिट्ठा है

बाहर
आतंक है
पिंजरे में
सुरक्षा है।

नफरत के बीज

उसने
विस्फोट से
उड़ा दिया है
उस 'चबूतरे' को

जिस पर
होली और ईद
बैठकर
साथ-साथ
मनाते थे
लोग

उसने
बो दिया है
नफरत के बीज
गाँवों और शहरों में
जहाँ मिलकर
खाते-कमाते थे
लोग

उसने
लड़ा दिया है
पड़ोसी को पड़ोसी से
जहाँ

एक आवाज पर
दौड़े चले आते थे
लोग

उसने
फैला दिया है आतंक
हर गली-कस्बे में
जहाँ
गीत-गज़ल
साथ-साथ गाते थे
लोग।

अन्तिम साँसें

रमजान का महीना
एक बच्ची
स्पीकर पर
बज रहे गाने को
दोहरा रही थी—

‘गुनाहों से
करो तौबा
कयामत
आनेवाली है’

तभी टीवी पर
खबर आयी
‘अजमेर शरीफ में
ख्वाजा की दरगाह पर
विस्फोट’

कौन है वह
जो बो रहा
नफरत के बीज
कर रहा
मोहब्बत की जमीन पर
चोट

यह
करारी हार है
आतंकवाद की
अन्तिम साँसें
गिन रहा है
वह

खुद-ब-खुद
अपने को
दीवार में चुन रहा है
वह

दरगाहों-मन्दिरों से
उठ रही है
चित्कार
बच्चे देख-समझ रहे हैं
रोज मिल-जुल रहे हैं
ढहा रहे हैं
नफरत की
दीवार।

इस्तेमाल हुआ

किसी ने
पहले उसको
गरम किया

फिर
उस पर
हथौड़ा चलाया

उसको
अपने मनमाफिक
मोड़कर
'हथियार' बनाया

नयी शक्ल में
वह
भारत-ईरान
पाकिस्तान-अफगानिस्तान आदि
घूम आया

जुनून में
न जाने कितने
निरीह लोग को
धरती से उठाया

वह
इसी में खुश है
कि 'हथियार'
नाम पाया

परन्तु
गलत इस्तेमाल हुआ
यह
समझ न पाया।

अर्थ

उनके पास
एक हथियार है
'अर्थ'

आतंकित
करने के
लिए

फिर
'शब्द'
चाहे जो हों

जोड़-तोड़
खरीद-फरोख्त
सच-झूठ
न्याय-अन्याय

सब
पर
भारी

वैसे ही
जैसे
उल्लू पर
'लक्ष्मी' की
सवारी।

दिल्ली में विस्फोट

लोग
भयाक्रान्त
नहीं थे
आक्रोश था
उनके अन्दर

लोग
निकल आये थे
भीड़ की
शक्ति में
वहीं पर
जहाँ फटे थे
बम

लोग
लड़े नहीं
आपस में
न आग लगायी
एक-दूसरे के
घरों में

लोगों ने
दिखा दिया
धर्म के नाम पर

उन्हें
लड़ा नहीं सकता
कोई

लोगों ने
संकल्प लिया
अब वे मिलकर
मुकाबला करेंगे
गैरइंसानी
हरकतों का।

गलत हाथों में हथियार

चोर ने
गीता
पढ़ा
मुस्कुराया

‘कर्म’ को
लक्ष्य
बनाया

अपने
काम में
तेजी से
हाथ
बढ़ाया

गलत
हाथों में
‘हथियार’
आया।

तोड़ दिया ‘पिंजरा’!

तुमने
तोड़ दिया
‘पिंजरा’
उड़ गया
‘पंछी’

तुमने
खींच दिया
संबंधों के बीच
विभाजन
की रेखा

तुम्हारा ‘नकार’
तुम्हारी ‘नफरत’
बड़ी हो गयी है
तुमसे

उसने
ध्वस्त कर दिया है
तुम्हारे
‘वजूद’ को

क्या तुमने
सुना

अपने अन्दर
टूट कर
गिरने के
शोर को

अब तुम
शायद फिर
खड़ा न हो
पाओगे

अब
तुम्हारे पास
प्रायश्चित्त का भी
समय
नहीं है

देख
रहे हो
सूरज डूब
रहा है
उसके आस-पास
अंधेरा
बढ़ता जा
रहा है।

आदमखोर

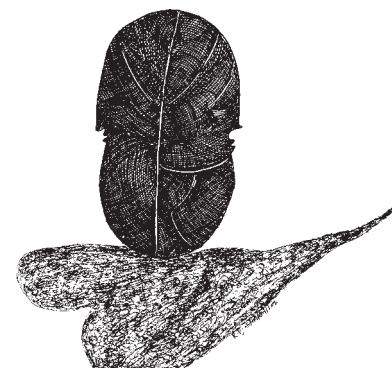
कुछ हवाएँ
समुद्र की लहरों को
चूमकर
लौटी हैं

वे
घूम-घूम कर
बता रही हैं
उसकी विशालता को
कह रही हैं
बहुत दयालु है
दानी है
वह

जबकि
सब जानते हैं
वह 'खारा' है
'सुनामी' बन कर
घुसता रहा है
बस्ती में

छिन्न-भिन्न
करता रहा है
लोक जीवन को

उसके किनारे पड़े
अस्थि-अवशेष
गवाह हैं
कि वह
आदमखोर है।



खुद बुनेंगे ताना-बाना

धरती का ईश्वर

सुबह
सोकर उठने से
लेकर
देर रात
सोने तक

या
सोते-सोते
अचानक जागकर

घर को साफ-सुथरा करते
बर्तन साफ करते
खाना बनाकर खिलाते
कपड़े धोते
बाजार में खरीदारी करते
मेहमानों की आव-भगत करते
रोते-रोते
हँस देते

मैं उसे
जब भी देखता हूँ
सोचता हूँ

वह
माँ-पत्नी-पुत्री-बहू-दोस्त
चाहे जो भी हो
अगर धरती पर
कोई ईश्वर है
तो
वह है!
वह है!
वह है!

‘तनहाई’ में

अचानक
पति
‘चल बसा’

भरे घर में
हो गयी
अकेली
वह

ससुराल वाले
कुछ दिन
खूब रोये

मायके वाले भी
पहुँचे
दुःखी-दुःखी
खोये-खोये

फिर
सतर्क हो गये
सब
कि गले
न पड़े

जिसका बोझ है
उसी के
सिर पड़े

‘तन्हाई’ में पड़ी
वह
रोती है
सुबह-शाम

न पैसा
उसके पास है
न जमीन-जायदाद
उसके नाम।

खुद बुनेंगे ताना-बाना

अब वह
रोती नहीं
हर बात पर
मुस्कुराकर
निकल जाती है

नहीं करती
महिला विधेयक
पर चर्चा

औरत के अधिकारों के लिए
लड़ती नहीं

कहती है
हम खुद बुनेंगे
अपने अधिकारों का
ताना-बाना

करेंगे तय
पुरुष की
चौहद्दी

और
नारा लगाती है
दुनिया की औरतों!
एक हो।

लड़की ने देखा

लड़की ने
देखा
उसको लेकर
काफी चिन्तित हूँ
लोग

फिर उसने देखा
रिश्ता
किसी और से
तय करते

फिर
उसने देखा
शादी के लिए
एक बड़ी भीड़ को
नाचते-गाते
खाते-पीते

फिर
उसने देखा
उसे
दूसरों के हाथों
सौंपते

और फिर
उसने देखा
उसको लेकर
किसी को
कोई चिन्ता नहीं।

मोहताज

किसी ने
शिक्षा
मुफ्त किया

किसी ने
शादी
करा दिया

किसी ने
प्रसव पर
कुछ दिया

किसी ने
विधवा पेंशन
बढ़ा दिया

वह
दौड़ती रही
टुकड़ों में मिली
'जिन्दगी'
के लिए

दाताओं ने
उसे मोहताज
बना दिया।

अस्वीकृति

आखिरकार
एक दिन
वह
बोल पड़ी
यह क्या बदतमीजी है
बॉस!

उसके
जीवन का यह
पहला सच
पहली अस्वीकृति
रुक गये
उसके कंधों तक
पहुँचने वाले
हाथ

घर लौटने पर
माँ ने कहा
शाबास!

यह पहल
मैंने किया होता
काश!

प्रश्नवाचक

‘प्रश्नवाचक’ से
काफी
मिलती है
शक्ल
उसकी

घर में
सड़क पर
कार्यालय में
एक
जटिल प्रश्न
की तरह
दिखाई पड़ती है
वह

कोशिश
हो रही है
लगातार
उसे
‘सरल’ करने की
‘तरल’ करने की
‘हल’ करने की।

पीठ पर बोरा

भोर में
रोज निकलती हैं वे
सड़क में
पीठ पर बोरा लादे

कागज के
टुकड़ों-डिब्बों
प्लास्टिक की बोतलों
को खोजती

पूरे बदन पर ठीक से
कपड़े नहीं होते उनके
पैबन्दों के बीच
झलकता है
उनका शरीर

प्लास्टिक की
गुड़िया की तरह
उनकी आँखें
बिखरे बाल

जैसे
किसी ने खेलकर
फेंक दिया हो

खिलौना
रास्ते के कुत्ते
गैंग बनाकर
झपटते हैं उन पर
नोचते हैं कपड़े
काट लेते हैं

मगर
रोक नहीं पाते
'रद्दी' में
जीवन की तलाश
और भुना लेने की
होड़

उनके
'शेयर' मार्केट में
पहले पहुँचने वाले का 'दाम'
ठीक-ठाक
मिल जाता
फिर 'भाव'
धड़ाम से
नीचे गिर जाता है।



पता नहीं क्या बनना है

बच्चे

बच्चे
अब घर
नहीं लौटते

लौटते हैं
एक स्कूल से
दूसरे स्कूल को

बच्चे
चिन्ता हो गये हैं
माता-पिता की

पैदा होने से
पहले ही
लिखी जा रही है
उनकी तकदीर

आई ए एस!
पी सी एस!
मंत्री!

माता-पिता
बहुत जल्दी में हैं
खड़ा कर देने के लिए
उनको 'स्टेज' पर

बच्चे
ठीक से हँस नहीं पा रहे हैं
देख नहीं पा रहे हैं
अपनी आँखों से
दुनिया

समय से पहले
बनाया जा रहा है
'विद्वान' उन्हें।

पता नहीं क्या बनना है!

बच्चा
आग बबूला
हुआ
फिर बोला—
हर कोई
सिर्फ यही प्रश्न
करता है

क्या नाम है?
किस क्लास में हो?
फिर नसीहत
देता है

पढ़ो!
बड़ा बनो!
अच्छा बनो!
झूठ मत बोलो!

सब झूठ बोलते हैं
सब आलसी हैं

सिर्फ मुझसे
सच बोलने

‘फर्स्ट क्लास फर्स्ट’ आने
बड़ा बनने
की अपेक्षा करते हैं

सब लोग
हर वक्त
पढ़ो-पढ़ो करते हैं
यही नहीं मालूम
क्या पढ़ना है
यही नहीं पता
क्या बनना है।

पन्द्रह अगस्त का दिन

बच्चे
वन्देमातरम्
गा रहे हैं

सुबह-सुबह
प्रभात फेरी में
निकले हैं

‘भारत माता की जय’
‘...अमर रहे’
का नारा
लगा रहे हैं

बच्चे
शहीदों को कर रहे हैं
याद
पल में गांधी
पल में बन रहे हैं
सुभाष

बड़ों ने
सौंप दिया है
देश भक्ति आदि का ‘भार’
बच्चों को

खुद
लुत्फ ले रहे हैं
छुट्टी का,
'पिकनिक' मना रहे हैं।

शोक संवेदना

शोक संवेदना
का 'मेसेज'
भेजते समय
छः वर्षीय प्रज्ञा ने पूछा—
क्या कर रहे हैं नाना

मैंने कहा—
शोक संवेदना व्यक्त कर रहा हूँ

उसने पूछा—
यह क्या होती है

मैंने बताया—
मित्र या नजदीकी के यहाँ
मृत्यु होने पर
दुःख व्यक्त करते हैं
इसी को शोक संवेदना कहते हैं

इस पर उसने कहा—
लेकिन आप तो दुःखी नहीं लगते।

(कवि ओम धीरज के पिता के निधन के बाद यक्ष प्रश्न)

काँउंसिलिंग

एक
बच्चे ने
एसी में
पढ़ाई की

दूसरे ने
धूप में

काँउंसिलिंग
हुई

एक
दिल्ली गया
पढ़ने

दूसरा
लौट गया
गाँव
खेती करने

एक
पढ़-लिख कर
विदेश में

नौकरी
कर रहा

दूसरा
खेतीकर
लोगों का
पेट
भर रहा।

बाबा!

बच्चे ने कहा
बाबा!
मुझ पर
क्यों गरमा रहें हैं
आप

मैं तो
आपकी सेवा में
लगा हूँ
क्यों इसे 'साजिश'
बता रहे हैं
आप

मैंने
किताब में
पढ़ा है
पेड़ में जब
फल लगते हैं
डालियाँ
झुक जाती हैं
क्यों बड़प्पन से
दूर जा रहे हैं
आप।

अभिमन्यु

माँ ने बेटे से
प्रश्न किया—

अभिमन्यु
'महाभारत' में
क्यों मारा गया?

बेटे ने
उत्तर दिया
अति उत्साह में

माँ ने
फिर पूछा
वह कैसे?

पुत्र का
उत्तर था—

कम उम्र में
अधिक 'ज्ञान' ने
असुंतलन
पैदा कर दिया

महारथियों से

लड़ने का
जोश भर दिया

वैसे ही
जैसे
पिताजी से
बहस करते समय
तुमने मुझे
'चाटा' धर दिया।

परिवेश से

बच्चा
जोर-जोर से
चिल्लाने
लगा

माँ को
मारने
लगा

सामान
फेंकने लगा

जिद
करने
लगा

उसे
डाक्टर को
दिखाया
गया

डाक्टर ने
कहा—

बच्चा
शरीर से
पूरी तरह
स्वस्थ है

ये सारी
हरकतें
अपने परिवेश से
सीख रहा है

इसलिए
मानो रोग से
ग्रस्त है।

दिल्ली जाने वाले बच्चे

यह उन्हें
मालूम है
कि वे कहाँ जा रहे हैं
कहाँ से आ रहे हैं

मगर
यह नहीं जानते
उन्हें
परख रहा है समय
कदम-कदम पर

चिल्लाने-शोर करने पर
निगाहें हैं
उसकी

ट्रेन में
'लव' वाले
फिल्मी-गीतों पर
डाँस-अन्त्याक्षरी
बड़ों का मजाक उड़ाना
निर्धारित कर रहा है
उनका भविष्य

सामूहिक जीवन के प्रशिक्षण में

सामाजिक जीवन से अलग
हुड़दंग में मस्त
वे अपने लिए
प्यार या नफरत में से
एक को
चुन रहे हैं

शिक्षक खुश हैं
घर लौट कर
यात्रा की
प्रशंसा करेंगे बच्चे
अभिभावकों की प्रसन्नता
अधिक आवश्यक है
उनके लिए

दिल्ली वाले
नाच देखेंगे-गाना सुनेंगे
सामान्य ज्ञान की जाँच करेंगे
पुरस्कार देंगे

और लौटा देंगे
यह कहते हुए
कि वे अभी बच्चे हैं
धीरे-धीरे
सब सीख लेंगे।



वह

अब होगी लड़ाई

अब
बोलना
बन्द करना
पड़ेगा

अब
खड़ा होना
पड़ेगा
तूफान के
विरुद्ध

अब
होगी लड़ाई
तलहटी में पड़ी
मिट्टी
और अँगड़ाई लेती
लहरों में

‘अश्वमेध यज्ञ’ का
घोड़ा
पकड़ रहे हैं
गुट बनाकर
कुछ लोग।

वह

वह
सिर उठाकर
चलने लगा है
उस सड़क पर
जिस पर
उसके बाप-दादा की
चलने की
हिमाकत नहीं थी

वह बोलने लगा है
उस सभा में
जिसमें
उसके बाप-दादा को
बैठने की
इजाजत नहीं थी

वह
नाचने लगा है
उस महफिल में
जिसमें
उसके बाप-दादा की
जाने की
हिम्मत नहीं थी।

बदलाव

मुझे
अपना 'हरवाहा'
समझ लिया है
क्या आपने

अपनी भाषा
दुरुस्त
कर लीजिए

जरा तमीज से
बोलिये
तहजीब का
परिचय दीजिये

ठीक है
आप पद से
बड़े हैं
मगर हम भी
अपनी जमीन पर
खड़े हैं।

ताकि आग जलती रहे

कोई
'पिरामिड'
आकार ले रहा है
नन्ही-नन्ही
घासों की
बस्ती में

रोकना
होगा
उसे

ताकि
हवा-पानी-धूप
मिलती रहे

'पिरामिड'
न सही
बस्ती में जरूरी है
'जगहट'

इससे भी
ज्यादा जरूरी है
धुएँ का
उठना
और
आग का
जलना।

रामदास हरिजन

समय से पहले ही
बूढ़ा हो
चला है
रामदास हरिजन

अब वह
रिक्शा नहीं खींच
पा रहा

हालाँकि
डग-मग
खिंचती चली जा रही है
उसी से
परिवार की गाड़ी

सन 62 से पहले
मेरे साथ
प्राइमरी में
पढ़ता था

शहर नहीं जा सका
पढ़ने
बन गया
मजदूर

धान रोपा
गेहूँ काटा
बोझ उठाया
जिसने-जब बुलाया
आधी रात को
दौड़ा आया

फिर भी
घर नहीं चला
पाया

नहीं निभा
तो रिक्शा
उठाया

खींचते-खींचते
थक रहा है
अब

शायद
किसी दिन
दम तोड़ दे
वह ।



रोज का धंधा

कभी भी

वह
'सार्वजनिक' है
उपयोग
किया जा सकता है
कभी भी
किसी समय

उसे
खड़ा किया जा सकता है
नीव में
दीवार की जगह
छत के रूप में
कभी भी
किसी समय

उसे
फेंका जा सकता है
गली में
सड़क पर
रद्दी की तरह
कभी भी
किसी समय।

रोज का धंधा

निकल गया
वह
तड़के
अपनी मंजिल
की ओर

कहा जाता है
यह उसका
रोज का
धंधा है
'रोज कुआँ खोदना
रोज पानी पीना' जैसा

उसकी मंजिल
न तो
'मियाँ की दौड़ मस्जिद' जैसी है
न मन्दिर में
घण्टा पीटने की तरह

चौराहे पर
रोज
एक नया 'मालिक'
उसकी 'पैमाइश' करता है
तौलता है उसे

फिर
खरीद लेता है
दिन भर के लिए
इस अनुबन्ध के साथ
कि साँस तक
गिरवी है
उसकी।

जोर लगाकर खड़ी हुई

दिल्ली
लखनऊ
या
कहीं और
फिर बदल गया
कैलेण्डर

तारीखें
आकर
चली गयीं
अतृप्त

हालाँकि
जोर लगाकर
खड़ी हुई
ताकि
उनके वजूद को
महसूस जाय

शामिल
किया जाय
उनके श्रम-मूल्य को
इतिहास में

इसके बावजूद
कि इतिहास
राजा का होता है
मजदूर का
नहीं।

वह आदमी है

रोज
टूटते हैं
उसके सपने

रोज
एक-एक ईंट
जोड़कर
खड़ा करता है
उन्हें

वह
आदमी है
इसलिए
नहीं थक रहा
नहीं भाग रहा

हर सुबह
सूरज की तरह
धरती से
उगता है
यह जानते हुए
कि डूबना
नियति है

वह
छू लेना चाहता है
आकाश की
अन्तिम
ऊँचाई को
हालाँकि
इस निर्माण में
छूट जाती है
उसकी
हरी-भरी धरती
और
एक-एक ईंट
जोड़कर
खड़ी की गयी
इमारत।

समकोण त्रिभुज में

समकोण त्रिभुज में
'वर्ग'
चाहे कर्ण का हो
लम्ब का हो
या आधार का
आजाद नहीं होता है

एक भुजा
हमेशा बंधी है
'राजधर्म' से
शेष की पहचान है
कर्म से

अगर उन्हें
'वर्ग' में बने रहना है
तो जोर लगाकर
हाँ में हाँ
करना है

जिन्होंने उठाई
अलग अस्तित्व की
आवाज
वे 'त्रिभुज' बनकर
रह गये हैं
आज

पाइथागोरस ने
भले ही कहा हो—
किसी समकोण त्रिभुज में
कर्ण पर बना वर्ग
आधार और लम्ब के
वर्गों के क्षेत्रफल के योग के
बराबर होता है

सच तो
यह है
'कर्ण' का वर्ग
शेष दोनों वर्गों से
हमेशा बड़ा होता है।

अपनी संसद के लिए

वह
फासला बना के
चल रहा है
एक चौराहा आगे
या
एक चौराहा पीछे

क्योंकि
मुख्य चौराहा कब्जे में है
कुछ विशेष
बैठकबाजों के
जो मुर्गा फँसाकर
'हलाल' करने में
माहिर है

वह
'जिबह' नहीं होना चाहता
टकराना भी
नहीं चाहता
कि समय से पूर्व
किये गये विद्रोह में
मिली है
असफल क्रान्ति

वह
छोटे-छोटे चौराहों पर
करता है बैठकी
तलाशता है
मार खाये लोगों को
ताकि खड़ी कर सके
'अपनी संसद'
और दे सके मात
मुख्य चौराहे पर जमे
माफियाओं को।



विकास जी

खाली पेट की चिन्ता

उन्होंने
चश्मे के अन्दर से
देखा
और बोले
इसमें
चिन्तन नहीं है

फिर
ठहाका लगाकर
जुट गये
'महिला विमर्श' पर

चिन्ता
से मुक्त चिन्तन
भरे पेट का दर्शन
उनके पास था

याचक को थी
खाली पेट
की चिन्ता।

विकास जी

कब आयेंगे
विकास जी

झोपड़ी में
झोपड़पट्टी में

इन्तजार है
दिहाड़ी मजदूरों को
कसरहट्टी में

जवाहर लाल नेहरू
इन्दिरा गांधी
अटल बिहारी वाजपेयी
मनमोहन सिंह

सभी ने
बार-बार
दावा किया

‘वह’
पहुँच रहे हैं
बस्ती में।

रंगीन पर्याय चाहिए

‘पीड़ा’ शब्द
श्वेत-श्याम
प्राचीन
असामयिक
इसका
रंगीन पर्याय
चाहिए

भाषाविद्
आलोचक
कवि
निबन्धकार
विद्वानों का
मत है

समय की माँग
के अनुरूप
भाषा
चाहिए

कला
कला के लिए
न सही
कलात्मक
ढाँचा
चाहिए।

तो क्या हुआ

एक

संसद में
'नोट'
तो क्या हुआ
'नीयत' में
खोट
तो क्या हुआ
'लोक' पर
चोट
तो क्या हुआ
मिल गया
'वोट'
तो क्या हुआ

दो

कचहरी
बिजली
टेलीफोन
नगरपालिका
रेल
हर कहीं
है 'अटैची' का
खेल

तीन

रातोंरात
जिनके बन रहे
भवन
चिन्हित हैं
ये लोग हैं
कौन

चार

ईमानदार आदमी का
बन्द है
खाता
उसके घर
कभी तेल नहीं
तो कभी
नहीं होता आटा

पाँच

अपनी नौकरी
जितने से
बची रहे
उतनी ही 'वसूल'
दिखा रहे
कर्मचारी
अच्छी रकम
ऊपर पहुँचा कर
लूट रहे
व्यापारी

छः

प्रवेश
परीक्षा
साक्षात्कार
लाखों में
चल रहा
कारोबार।

कुछ लोगों को

मैंने
जो कुछ
पहले लिखा था
वह झूठ नहीं था
आज
जो लिख रहा हूँ
वह भी
झूठ नहीं है

दरअसल
जिन्दगी
एक ऐसी किताब है
जिसमें
लिखा तो जाता है सच
मगर पढ़ने वाले
कभी
सच मानते हैं
कभी झूठ

सच तो
यह है

सबको नहीं
मिल रहा

पेट भर भोजन
पीने को पानी
तन पर कपड़ा
रहने के लिए मकान
नौकरी-रोजगार-सुरक्षा
यहाँ तक कि
न्याय

सच
यह भी है
कुछ लोगों को मिल रहा
यह सब कुछ
बहुतायत में।

देख नहीं पाते

जड़ें
कितनी
गहरी हैं

या कि
पौधा किस
रासायनिक क्रिया
के तहत
ले रहा है
ऊर्जा

कौन देखता है

लोग
तो देखते हैं
सिर्फ
पत्ती-फूल-फल

देख नहीं पाते
भागते शहर के अन्दर
रुके शहर को

कालीन पर लगे
पैबन्द को

जो झाँकता है
बार-बार

कंधे पर लदी
बैशाखी को
जो रोकती है
हर अगला कदम

‘हाँका’ लगाने वाली
भीड़ को
जो शिकार
करती है

और ‘कबीला संस्कृति’ को
जो विवश करती है
पीछे लौटने को।

शुभ-चिन्तक

आपका
झण्डा
बुलन्दी
पर है !

आप
साक्षात्
शिव हैं !

यह कहते हुए
उसने
बढ़ा दिया
चंदे की रसीद

घर से
निकले थे
दवा लेने
चुका दिया
‘शुभ-चिन्तक की
फीस।

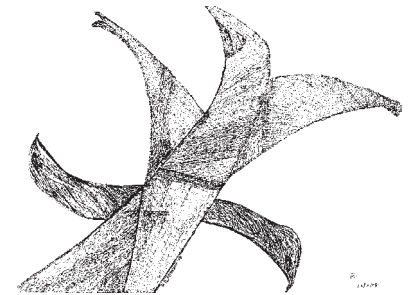
बाजार से लौटकर

बाजार से
लौटा है
माथा पकड़कर
बैठा है

‘भाव’
उसकी पहुँच से
बाहर
जा रहा है
कोई
रोक नहीं
पा रहा है

कह रही है
खाली पड़ी
बटलोई

अब लोग लूटेंगे
रसोई।



मोबाइल बनाम चार्जर

पतली स्क्रीन

फुल स्क्रीन
उपलब्ध
नहीं

दौड़
लम्बी-पतली
स्क्रीन पर

कभी
सिर गायब
कभी
पैर

टुकड़ों में
प्रस्तुति

सत्यनारायण के
प्रसाद
की तरह

सिर्फ
शरीर
चेहरा नहीं

मुखौटा ही
पहचान

एक
सीमित
दायरा

घुमावदार
गोल-गोल

दो सीढ़ी ऊपर
चार सीढ़ी नीचे
न कोई आगे
न कोई पीछे।

मोबाइल बनाम चार्जर

मोबाइल को
सब
जानते हैं
घूमता है
गली-गली

लोगबाग
लेते हैं
हाथों-हाथ

और चार्जर
ऊर्जा के लिए
बार-बार
रिश्ता जोड़ता है
बिजली से

खून के घूँट
पीता है वह
गुमनामी में
जीता है वह।

वायरस

‘वायरस’
पहुँच जा रहा है
कहीं भी

ठप्प
कर दे रहा है
‘सिस्टम’ को

हतप्रभ हैं
लोग-बाग
उसकी
गतिविधियों से

‘वायरस’ के
मुकाबले के लिए
खड़े किये
जा रहे हैं
‘एन्टीवायरस’।

एलियन्स

बार-बार
आ रहे हैं धरती पर
एलियन्स

कर रहे हैं
हमले
उठा ले जा रहे हैं
यहाँ के
लोगों को

इसमें
नई बात
क्या है

यहाँ तो
गली-गली हैं
एलियन्स

हर फन में
माहिर
‘सर्वव्यापी’
एलियन्स
मुहनोचवा
एलियन्स।

नार्को टेस्ट से

जाड़े की रात में
सड़क की पटरी पर
पड़ा मिला
वह

उसका
नार्को टेस्ट
कराया गया

रिपोर्ट से
पता चला

पत्नी
बिना दवा
चल बसी

बेटी ने
सामूहिक बलात्कार के बाद
आत्महत्या
कर ली

बेटा
नौकरी की तलाश में गया
लौटा नहीं

वह
कई दिनों से भूखा है
गिन रहा है
दिन

बन्द हो चुके हैं
उसके लिए सारे दरवाजे
थक गया है
ले-लेकर
ऋण।

अभियन्ता-संस्कृति

वे
हमारे लिए
बना रहे हैं
नया शहर
हर सुविधा
सुख-शान्ति
शौक का ध्यान
रखकर

उन्होंने
बना दिये हैं
घरों में
सबके लिए
अलग-अलग कमरे
खिड़की-दरवाजे
ताकि जब चाहें
बन्द कर लें

अन्दर
रहते हुए
गेट में
ताला
लगा दें
मिलने-जुलने से
बच सकें

उन्हें
पुरस्कृत
किया जाना चाहिए
इस 'अभिनव'
अभियन्ता-संस्कृति की
स्थापना के लिए।

आँसू का आना

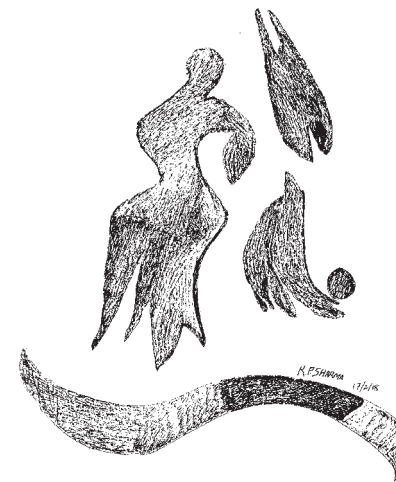
शोधकर्ता
कह
रहे हैं

आँखों में
आँसू का आना
नुकसानदायक
नहीं है

वह
तनाव को
बाहर
निकालता है

बढ़ाने में
कतई
सहायक
नहीं है

खूब रोइए
रोना
कष्टदायक नहीं है।



कबीले से छूट गया

रोशनी के करीब से

कई बार
लौटा हूँ
रोशनी के
बिल्कुल करीब से

कुछ लोग
जो रोशनी में
नहा आये हैं
बताते हैं
बहुत आनन्द है
उधर

बस करना इतना है
रीढ़ की हड्डी
थोड़ी आगे
झुकाये रखिये

गर्दन थोड़ी
लटकाये
रखिये

सिर्फ
जय हो! जय हो!
हाँ जी! हाँ जी!
करते रहिए।

कुछ भी बनने को तैयार

बाजार में
खड़े
हूँ
आटा-दाल-चावल
आलू-गोभी-बैंगन
नमक-तेल-हल्दी
के बीच

कुछ भी
बनने को
तैयार

बस
खरीदार का
है इन्तजार

फिर
चाहे हो
'स्मॉल' या
'बिग बाजार'।

कितना शान्त

शान्त
और शान्त
बहुत शान्त

आखिर
कितना शान्त
चाहिए
आदमी

ज्वालामुखी
पर
बैठा है

किसी न किसी
दिन
भड़क उठेगा
आग के
शोले
बनकर

उस दिन क्या होगा
जब खड़ा हो जायेगा
तनकर।

कबीले से छूट गया

आदमी
टूट गया
कबीले से
छूट गया

न खुलकर
हँसता है
न रोता है

धड़ल्ले से
बिक रहा
कितना
सस्ता है

ऊपर से
'चेहराया'
नीचे से
फूट गया।

भौचक

दुकानें
'ओवर फ्लो'
हो रही हैं
उत्पादन की तेज
गति से

आदमी
भौचक है
क्या-क्या
खरीदे

पिछले माह की
उधारी
चुकता करे
कि बिजली-टेलीफोन
का बिल भरे

रोज का खर्च
उठाये
कि रिश्तेदारी
निभाये

बच्चों का
दाखिला
कराये
कि त्योहार मनाये।

आइये चला जाय

आइये
चला जाय गाँव
देखा जाय
पेड़ों को
नदी को
सूरज को

शहर से
नहीं दिखाई
देते ये

आइये
पूछा जाय
लोगों का हाल-चाल
बाँटा जाय सुख-दुःख
बैठा जाय कुछ देर
खेतों के बीच

शहर से नहीं दिखाई
देते ये

आइये
सहेजा जाय

फसलों को
पेड़ों को

बाँटकर खाने की
संस्कृति को

शहर से
नहीं दिखाई देते ये।

सीज फायर

उसने
करारा हमला
किया

मैंने
बर्दाश्त
किया

मेरे
हमले से
गरमाया था
वह

अब दोनों
हमले के
मूड में
नहीं हैं

‘सीज फायर’
हो चुका है।

दोनों रास्ता

जिस बैल ने
कोल्हू
खींचा
वह
‘कोल्हू का बैल’
मुहावरा
पाया

जो बैल
बेलगाम
घूमता रहा
वह
‘आवारा साँड़’
कहलाया

कौन
‘मानक’ है
कहाँ कोई
बता पाया

इसीलिए
उसने
वक्त-जरूरत
दोनों रास्ता
अपनाया।

मन्दिर का लाउडस्पीकर

सुबह
चार बजे
जोर से बज उठा
मन्दिर का
लाउडस्पीकर

बजता रहा
आठ बजे के
बाद तक

दिन में
जब जो आया
कैसेट लगाया
मन माफिक
गाना बजाया

शाम को
पुजारी ने
फिर स्विच दबाया

कोई बुजुर्ग
कोई बीमार
कोई छात्र
पूरी नींद
सो नहीं पाया

घनी बस्ती में
इतना शोर
अजीबोगरीब है
भगवान की माया।

नये घर की तलाश

एक
घर है

घर में
अपनी जरूरत भर का
सब कुछ है

मगर
मैं घर में
नहीं हूँ

मुझे
तलाश है
नये घर की
जहाँ रह सकूँ
आजाद

आँसू
पोछ सकूँ
ढलते सूरज का

सहारा
दे सकूँ
नदी को

बहूँ
उसी की तरह
सबके लिए।



नहीं उगना चाहिए था

पिंजरा खाली था

पता नहीं
वह
क्या कहना
चाहता था

सारी वर्जनाएँ
तोड़कर
बाहर
आ गया था

कौन
जानता था
ढलती शाम का
वह सूरज

डूबने से पहले
लाल होकर
चमका था

अन्तिम
यात्रा की
तैयारी में था

सुबह
लोगों ने देखा
पिंजरा
खाली था।

(कवि नन्दल हितैषी के छोटे भ्राता के निधन पर श्रद्धांजलि)

नहीं उगना चाहिए था

एक दिन
पहाड़ पर उग आया
एक छोटे कद का
वृक्ष

घाटी के
तमाम लम्बे पेड़ों से
अचानक
बड़ा
दिखाई देने लगा

घाटी के
वृक्षों ने की
पंचायत
और फैसला दिया

उसे वहाँ
नहीं उगना चाहिए था

शिष्टाचार भी
कुछ होता है

वरिष्ठता का तो
लिहाज करना चाहिए था।

बहस का मुद्दा

जब भी
समय आया
पंचायत
में
जवाब देने का

उसने
धर्म के नाम पर
दंगा
करा दिया

आरक्षण के नाम पर
रेल लाइन
उखड़वा
दिया

नये राज्य के नाम पर
बलवा
करा दिया

स्वायत्तता के नाम पर
आतंकवादियों का
साथ दिया

फिर
बहस का मुद्दा
नहीं बन पाये
भूख!
शोषण!
बेकारी!
लाचारी!

तुम्हारी पीठ पर से

मेरे पास
वक्त नहीं है
तुम्हारे लिए

अब मैं
अपने बारे में
सोचने
लगा हूँ

गोट
बैठाने
लगा हूँ

सीढ़ियाँ
चढ़ने
लगा हूँ

तुम्हारी
पीठ पर
चढ़कर
आगे निकलने
लगा हूँ।

सच्चाई जान तो लो

न्यायाधीश !
सजा
देने के बाद
सच्चाई
जान तो लो

मुझको
छोड़ो

अपनी
सोचो

तुम्हारे लिए
जो गड़ढा
खोद चुके हैं
उनको
पहचान तो लो

मिलना-जुलना
टीम बनाना
एवरेस्ट पर
झण्डा फहराना
उन्हें भाता नहीं

फूट डालकर
मुस्कुराते हैं
छीनने के अलावा
उन्हें कुछ
आता नहीं

वे शातिर हैं
माहिर हैं
झगड़ा लगाने में

किसी चौराहे पर
गली के मोड़ पर
खड़े मिलेंगे
उन्हें पहचान तो लो।

फार्म भरते हुए

नापता है
वह
अपने को
'फार्म'
भरते हुए

तौलता है
वह
अपने को
हस्ताक्षर
करते हुए

फिर 'फार्म'
चला जाता है
उनके पास
जो नापते हैं
'नोटों' की ऊँचाई
'फार्म'
पढ़ते हुए

जो अन्दाजते हैं
नोटों का भार
'कॉल'
करते हुए।

आज का समय

चीनी है
चाय है
दूध है
माचिस भी है
जलाने वाला
नहीं

दाल है
चावल है
रोटी है
सब्जी भी है
खिलाने वाला
नहीं

बाइक है
मोटर है
गाड़ी है
हवाई जहाज भी है
ले जाने वाला
नहीं है।

इतने अच्छे क्यों

फूल
बोलते हैं
चाहे
छत पर हों
बारजे में हों

फूल
बहुत गहरे
उतर
जाते हैं

फूलते हैं
तो मँहकाते हैं
अन्दर का
कोना-कोना

फूल
इतने अच्छे
क्यों हैं

कि
काँटों का
जीने का हक
छिन जाता है।

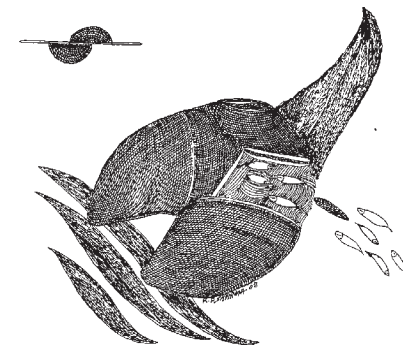
‘बर्थ डे’ मनाया

उसने
बच्चे का
‘बर्थ डे’ मनाया

औकात से
अधिक
खर्च किया
खूब
खिलाया-पिलाया

दूसरे दिन
बच्चा
बीमार हो गया

घर में
पैसा नहीं था
माँ ने
पड़ोसी के आगे
हाथ फैलाया।



आजादी चाहिए

सच लिखा

मैंने
जो कुछ लिखा
सच लिखा
सच के सिवाय
कुछ नहीं लिखा

मैं
मजदूरों के
पसीने की गंध को
'महक'
कैसे लिखता

मैंने
जो कुछ लिखा
सच लिखा
सच के सिवाय
कुछ नहीं लिखा

मैं
रोती आँखों के
आँसू को
'चमक'
कैसे लिखता

मैंने
जो कुछ लिखा
सच लिखा
सच के सिवाय
कुछ नहीं लिखा

मैं
भिखारी की कटोरी में
गिरते पैसे को
'खनक'
कैसे लिखता

मैंने
जो कुछ लिखा
सच लिखा
सच के सिवाय
कुछ नहीं लिखा

मैं
अपने वजूद के लिए
लड़ने वालों को
'सनक'
कैसे लिखता

मैंने
जो कुछ लिखा
सच लिखा
सच के सिवाय
कुछ नहीं लिखा

मैं
बाजार में चलने वाले

गीलट के सिक्कों को
'कनक'
कैसे लिखता

मैंने
जो कुछ लिखा
सच लिखा
सच के सिवाय
कुछ नहीं लिखा

मैं
हक माँगने वालों पर
पड़ी लाठियों को
'हनक'
कैसे लिखता।

रोशनी क्यों नहीं

यहाँ पर
रोशनी
क्यों नहीं

यहाँ पर
भूख
क्यों हाहाकार
मचाये है

क्यों
छत नहीं
क्यों
बेकार हैं लोग

क्यों
जिन्दगी
इतनी हो गयी है
सस्ती

यहाँ पर
सूरज
क्यों अपनी मर्जी से
बाँटता है
प्रकाश

अब 'देवता'
क्यों

नहीं दे पा रहे
आत्मविश्वास

भीड़
खुद फैसले करने
लगी है

क्यों लगता है
डूब रही है
हमारी
कश्ती

यहाँ पर
बचकर
क्यों
चल रहा
एक दूसरे
से
आदमी

भागता हुआ
शहर
डरा-सा
क्यों है

भीड़ है
मगर जीवन
अधमरा-सा
क्यों है

क्यों
खिलौना महँगा है
बन्दूक है
सस्ती।

आजादी चाहिए

हम खेल
रहे हैं
उनके हाथों में
मुद्दत से

अब हमें चाहिए आजादी
आयुधों की
गुलामी से
होड़-जकड़बन्दी से

गांधी नहीं हैं
तो क्या हुआ
एक 'लाठी'
और 'तीन बन्दर' हैं

हथियारों की खेप
वापस होगी
उसी रास्ते से
जिस मार्ग से
लौटे हैं विश्वविजेता
थके-हारे
अधूरे स्वप्नों के साथ
पहले भी

अभ्यास बन्द होगा
अब इस खेल का
वियतनाम हो
या भारत
सबको चाहिए
मुक्त आकाश
अविभाजित धरती

बुद्ध की वाणी
फिर
तेज हो रही है
सुनिए!
निकलिए!
चलिए!

सपने में दिल्ली

मैं
भारत के
प्रधानमंत्री की
कुर्सी पर
बैठा हूँ

मैंने
मंत्रिमंडल की बैठक में
नये संविधान का
मसौदा
पेश किया है

गैर जिम्मेदार विपक्ष को
जिम्मेदारियों से
बांधा है
जवाबदेही तय की है
मंत्री पद
दिया है

रोटी-कपड़ा-मकान
शिक्षा-चिकित्सा
होगी मुफ्त
आवारागर्दी
बर्दाश्त नहीं होगी

कर्मचारियों को
हमेशा रहना
होगा दुरुस्त

अनुशासन पर
विशेष
जोर दिया है

आतंकी-माफिया-मवाली-घूसखोर
गुण्डा-बदमाश-ऐय्याश-चोर
रहेंगे जेल के अन्दर
आम आदमी की
सुरक्षा का
संकल्प लिया है

मीडिया की
तय की है
सीमा
उन पर अंकुश होगा
जो 'न्यूज' का
बना रहे
'कीमा'
महिलाओं की छवि
बिगाड़ने वाली
आग लगाने वाली
खबरों की भाषा
संयमित रखने का
निर्देश दिया है

मनमानी कीमत
वसूलने वालों पर
होगी कड़ाई

राजनीति को अराजक
बनाने वालों की
होगी धुनाई
विकास का धन
हड़पने वालों को
आजीवन कारावास
दिया है।

गुरुत्वाकर्षण के खिलाफ

सिर्फ दस्तक देने से
नहीं खुलते
दरवाजे
नहीं गिरतीं
दीवारें
नहीं बनते रास्ते

बड़ी मशक्कत
करनी पड़ती है
खड़ा होना पड़ता है
'गुरुत्वाकर्षण' के खिलाफ

एक पूरा का पूरा
गैंग तोड़ना पड़ता है
चट्टानों का

सिर्फ 'सादर नमस्कार'
करने से
नहीं खुलते रिश्ते
मुस्कुराकर
बढ़ाना पड़ता है हाथ
अपने अन्दर के
'गुरुत्वाकर्षण' के खिलाफ
खड़ा होना पड़ता है।

सिर्फ सफेद झंडी
लहराने से
नहीं रुकते युद्ध
युद्ध रोकने के लिए
काट-काट कर
साफ करना पड़ता है
अपने अन्दर के जंगल को
जीत की बलवती
इच्छाओं को।

बहुत कड़वा नहीं

सच तो
यह है
बिजली के न होने पर
पंखे की तरह
चलते हैं
हम

दिन में
आग पर
चलते हैं
रात में
ढिबरी की तरह
जलते हैं
हम

जनरेटर के
धुएँ में
साँस लेते हैं
कर्कश शोर में
पलते हैं
हम

सच
बहुत कड़वा

नहीं है
हमारे लिए

कभी
झण्डे की तरह
फहरा दिये जाते हैं

कभी
बर्फ की तरह
गलते हैं
हम।

आओ

आओ
अब कुछ
'अलाभकारी-मूर्खतापूर्ण'
कार्य करें

बुद्धिजीवियों
व्यवसायों
नेताओं ने
हमें
बहुत ऊपर
चढ़ा दिया है

अब
नीचे
जमीन पर
उतरें

भूखों को
रोटी
वस्त्रहीनों को
कपड़ा दें

खुले
आकाश के नीचे

रहने वालों के लिए
मकान का
इन्तजाम करें

जो पिट रहे
जो लुट रहे
जो घुट रहे
उनके पक्ष में
अपने को
खड़ा करें।

कंधे सीढ़ी

एक

लोग
बदलते रहे
झण्डे
कि शायद
उनकी उम्मीद पर
खरा
उतरे कोई

दो

भीड़
कंधा बनती
गयी
कंधे सीढ़ी
बनते गये

तीन

दाना-पानी
मकान-पढ़ाई
कुछ भी तो
ठीक से
नहीं मिला

भाई
चार

जिसने
जिसको चाहा
मारा-पीटा
लूटा-सताया
गाँव को
फूँककर
होली मनाया।

चिन्तन और चिन्ता

मैंने
लाख कोशिश की
'चिन्तन' को
मनाने की
वह मानता ही
नहीं

कहता है—
जब तक
'चिन्ता' रहेगी
नहीं आऊँगा

क्या करूँ
'चिन्ता' घर से
जाने को
तैयार नहीं
कहती है—
'आजाद भारत में'
मुझे
घर से निकालने को।
आपको
कोई अधिकार
नहीं।

अपना-अपना भारत

लोक
अलग

तंत्र
अलग

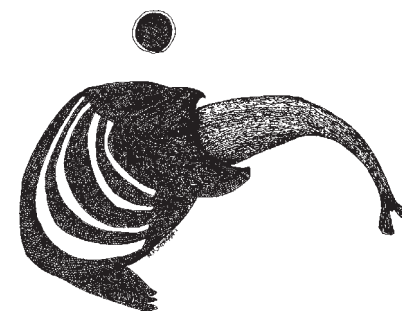
पूजा
अलग

मंत्र
अलग

सबका
अपना-अपना
भारत है

कोई
जन से
अलग

कोई
जनतंत्र से
अलग।



मैं पुल हूँ

कोई सीमा न रहे

एक सीमा है
हमारी
उसको
पार करना
ठीक नहीं

एक सीमा है
उनकी
उसको
पार करना
ठीक नहीं

परन्तु
दोनों चाहते हैं
कोई सीमा
न रहे

जब चाहें
आयें-जायें
जब चाहें
गले मिले

यह सवाल
अन्धेर नगरी

के राजा को
समझाये कौन

‘टका सेर भाजी
टका सेर खाजा’
छोड़कर
आगे आये कौन।

ढूँढ़ रहा हूँ

पुरानी डायरी
के फटे
पन्नों में
ढूँढ़ रहा हूँ
तुम्हें

आधी रात के बाद
जब सब
चले गये हैं
अपने-अपने
घरों में

बन्द हो गये हैं
सारे
दरवाजे
रास्ता
सुनसान
हो गया है

यह जानते हुए
कि अब
तुम नहीं मिलोगे

‘गंगा’ में

काफी पानी
बह गया है

आखिर
'गंगा' में
पानी भी तो
काफी कम
रह गया है।

अन्विति को तोड़ा

छलक गया
पानी
अन्दर का

बाँच गया
भाग्य
समन्दर का

बह गया
दर्द
गलियों से
डरे हुए
लोग
बाहुबलियों से

अन्विति को
तोड़ा
जब उसने
बिगड़ गया
खेल
'जन्तर-मन्तर' का

टुकड़े-टुकड़े
हो गयी

हवा
राज पथ पर
आ गया
होरी

खेल अब
बन्द होगा
बन्दर का।

अनुबन्ध

एक
अनुबन्ध अब
मुक्ति का

डेहरी के बाहर
निकल रही
रोशनी से
पसरे आँधियारे को
भेदने की
युक्ति का

वासन्ती
रंगों में
सामन्ती
हवाएँ

पत्तों में
खिंची
तिरछी
रेखाएँ

समय है
बदलने का
भाग्य की
उक्ति का।

रोज शाम मिलती रही

कितने दृश्य
बने बिगड़े
अपनी परछाई के
जो आकार के साथ
अपनी स्थिति
बदलती रही

कभी आगे
कभी पीछे
कभी दायें
कभी बायें
चलती रही

कितने चित्र
बने-बिगड़े
स्वप्नों के
आकार ग्रहण करने से
पहले ही
टूटे-बिखरे

रिश्तों की
डोर की तरह
उम्र चढ़ती रही
उम्र ढलती रही

कितनी सुबहें
आर्यों-गर्यों
मशाल-मिसाल
बनकर
मगर शाम
रोज मिलती रही
और काली रात
करवटें
बदलती रही।

तोड़ते-तोड़ते थक जाओगे

मित्र !

हमें तोड़ते-तोड़ते
थक जाओगे
इस जमीन में
मोहब्बत की जड़ें हैं
बहुत गहरी
तुम यहाँ नफरत के बीज
नहीं बो पाओगे

नदी-पहाड़
चाँद-सूरज-सितारे
प्रेम की डोर में
बँधे हैं सारे
आँखें खोलकर देखोगे
तो समझ में आयेगा
मृत्यु जब
नहीं मिटा पाई हमको
तुम क्या
मिटा पाओगे

तुम्हारे
नफरत के खिलाफ
फिर खड़ा हो जायेगा
हमी में से कोई संत

कोई पैगम्बर
बहा देगा दिलों में
प्यार का समन्दर
तुम्हारा सारा आतंक
धुआँ बनकर
उड़ जायेगा
तुम अकेले होगे
कोई कंधा भी
न लगायेगा
रोना चाहोगे तो
रो भी न पाओगे।

बिखरते तिनके

पहले
चिड़िया ने खोजा
साथी

फिर
बनाना शुरू किया
घोंसला

अण्डे दिये
बच्चों की परवरिश की
दुनिया की फितरत से
रू-ब-रू कराया
उड़ना सिखाया

चिड़िया
निकल गयी
नये साथी की
तलाश में

बच्चे भी
उड़ गये
घोंसले से

अब
स्मृति अवशेष की तरह

बचा है
उजड़ा घोंसला

और बिखरता
उसका
एक-एक तिनका।

मैं पुल हूँ

मुझ पर से
होकर
गुजरती हैं
सैकड़ों गाड़ियाँ
मैं
पुल हूँ
पटरी
नहीं बन सका

कैसे
साथ देता
अन्त तक
तुम्हारे
वसन्त तक

सच तो
यह है

मैं
फर्क नहीं
कर पा रहा
पतझड़
और वसन्त में
उनके

आने-जाने के
समय में

तुम
मानो न मानो
सबका
अपना-अपना
वसन्त है
तुम्हारा
और मेरा भी।

फिर मिलेंगे

अच्छा
फिर मिलेंगे
कहकर
मैं आगे
निकल आया

इस तरह
छूटते गये
सलातभी में उठे
न जाने कितने हाथ

यहाँ तक
पहुँचते-पहुँचते
छूट गया
कितने प्रियजनों
का साथ

अब तो
मन अतीत में है
केवल तन
चल रहा है
समय के साथ।

